Research Discourse (ISSN 2277-2014) : An International Peer-reviewed Refereed Research Journal, **Pub. by :**SARDI, Vns, U.P.(INDIA)
Indexed by : IIJIF, I2OR, SJIF, **I2OR Impact Factor :**7.250, Vol . XII, No. IV, October - December 2022, Page No. : 102-103

निर्गुण भक्त कवियों में आर्थिक चेतना

डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय*

*सहायक प्राध्यापक, शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर, जिला– कोरिया (छ.ग.)

सारांश : भारत सदैव से धर्म प्रधान देश रहा है। हजारो–लाखों वर्षो से यहाँ विभिन्न धर्मावलम्बियों तथा मतों के लोगों का वास रहा है। निर्गुण भक्त कवियों ने अपनी पूजा पद्धति में या कहे भक्ति पद्धति में लोककल्याणकारी सामाजिक स्वरूप को अभिव्यजित किया है। इनका लक्ष्य काव्य के मानदण्डों से इतर सामाजिक जीवन और उसमें भी सामान्य से सामान्य जन–मानस के कल्याण हेतु साहित्य–सृजन करना था। इन्होंने पुरानी रूढ़ मान्यताओं को खण्डित कर स्वानुभव से निर्मित मान्यताओं द्वारा अपने प्रगतिशील होने का परिचय दिया। सभी निर्गुण भक्त कवियों ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, व राजनैतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है और उसका जमकर विरोध भी किया है।

मुख्य शब्द : निर्गुण भक्त, आर्थिक चेतना, लोककल्याणकारी, धर्म, आर्थिक विषमता आदि।

निर्गुण भक्त कवियों के समय का समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था जो कि मूलतः आर्थिक विषमता द्वारा उत्पन्न हुआ था। अर्थ की हमारे जीवन में विशेष अनिवार्यता होती है। वह अर्थ ही है जो कि हमारे सम्पूर्ण जीवन को विभिन्न प्रकार के आरोहो–अवरोहों से युक्त करता है। साथ ही यह जीविका के लिए भी परमावश्यक होता है। जैसा कि हमारे शास्त्रों में भी व्यजित है कि पाप की पृष्ठभूमि में सामान्यतः भूख की ही अवस्थिति होती है।[1] धर्म के अनुष्ठान के लिए तथा सामाजिक कल्याण के लिए धन की आवश्यकता होती ही है। धर्मानुष्ठान शरीर द्वारा सम्भव है, तथा शरीर अन्न से पोषित होता है, इसलिए कबीर ने इस भाव को व्यंजित किया है कि भूखे पेट ईश्वरोपासना सर्वथा असम्भव है

भूखे भगति न कीजै यह माला अपनी लीजै।[2]

समाज की आर्थिक विषमता के कारण समाज में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते है। इसके कारण धनिक और निर्धनों के बीच द्वेष की गहरी खाई खिचती चली जाती है। एक तरफ धनिक वर्ग ऐश्वर्यपूर्ण जीवन भोग रहा है तो निर्धन भोजन तथा तन ढकने हेतु फटे चिथड़ों के लिए भी मुहाल है। धनिक वर्ग ऊँचे प्रासादों में निवास करते हैं जबकि निर्धन टूटी झोपड़ी के लिए भी मुश्किल से जुगाड़ कर पाते हैं

"कबीर कहा गरनियाँ ऊँचे देखि आवास।
छिनहर घर अरू छिनहर टाटी।।
घन गरजत कपै मोरी छाति।[3]"

कबीर धनिकों द्वारा निर्धनों की उपेक्षा से अत्यधिक क्षुब्ध होते हैं और उन्हें चेतावनी देते है कि किसी को हीन समझकर उसका अनादर कभी नहीं करना चाहिए। क्या पता कब वह तुमसे बलशाली होकर तुम्ही को रौंद डाले। यह कबीर की प्रगतिशील चेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम है–

"कबीर घास न नीदिये, जो पाऊँ तले होइ।
डड़ि पड़ै जब आँख में, खरा दुहेला होइ।।[4]

कबीर कालीन समाज में उच्च वर्ग विलासिता में आकंठ इतना डूबा हुआ था कि समाज की निम्न वर्गीय जनता किस प्रकार कंगाल हो रही है और दुर्भिक्ष के संकटों से जूझ रही है इसका ख्याल करने वाला शायद कोई न था। इसका एक मात्र कारण आर्थिक विषमता ही प्रतीत होता है। जनता की स्थिति इतनी संकटपूर्ण थी कि उन्हें संतानों के स्नेह से भी वंचित होना पड़ा था

कोई लरका बेचई लरकी बेचै कोई।"[5]

कबीर केवल धनिकों को ही नहीं बल्कि उननिर्धनों को भी फटकार लगाते हैं, जो बिना कर्म किए अपनापेट भरना चाहता है, जो निर्धन होने की दुहाई देकर शिक्षामांगने का जतन करता है। वे निर्धनों में आत्म–सम्मानजागृत कराने के उद्देश्य से कहते हैं कि–

"भूखा–भूखा क्या करे, कहा सुनावे लोग।
भांडा घड़ि जिनि मुदिया, कोई पूरण जोग।[6]

कबीर धन को महत्व देते हैं लेकिन आवश्यकता से अधिक अर्थ–संचय के वे विरोधी भी हैं। वे उतना ही धन आवश्यक मानते हैं जिससे कि परिवार का भरण–पोषण आसानी से हो जाय तथा साधु–सन्यासी, मित्र–बन्धुओं, अतिथि आदि को भी सम्मान के साथ खिलाया जा सके।

साई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाए।
मैं भी भूखा ना रहू, साधु न भूखा जाय।।[7]"

भक्त कवि रैदास ने मानव जीवन को हीरे की तरह अनमोल माना है। धन के पीछे अपने जीवन को नष्ट करने वाले मनुष्यों को ये कहते हैं कि धन तो जीवन की झूठी आशा है–

"घन जीवन की झूटी आसा
सति सति भाषे जन रैदासा।।[8]"

कबीर के समान रैदास जी ने भी कर्मपूर्वक आजीविका चलाने की बात कही है। उनका कहना है कि श्रम करके जो अपनी जीविका, रोजी–रोटी चलाता है। उसकी यह नेक कमाई कभी निष्फल नहीं होती है

रविदास श्रम करि खइहिं ज्यौ लो पार बसाय
नेक कमाई जउ करई, कबहुँ न निहकल जाए।।[9]

नानक धन के पीछे भागने वाले मनुष्यों को कहते कि क्यों व्यर्थ में धन के पीछे भागते हो। यह तो सब के मोह का परदा है–

धनु– धनु कहा पुकारते माइआ सभ कूट।
नम बिहूने नानका होत जात सभु घूर।।[10]

नानक जी कहते हैं कि धन व बल का अहंकार करने से कोई लाभ नहीं है। यह शरीर जिसका तुझे अभिमान है अपना नहीं है। राज्य, भूमि, धन आदि सदा केतेरे अपने नहीं है। तू किस किससे मोह कर रहा है ?

आपन तनु नहीं जाको गरबा।
राज मिलख नहीं आपन दरसा।।
आपन नहीं का कड लपटाइओ।
आपन नामु सतिगुर ते पाइओ।।[11]

नानक धन से होने वाले विकारों की निंदा करते हैं क्योंकि समाज में जितने भी विकार व्याप्त हो रहे थे या आज हो रहे हैं उनमें अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी बातों को अन्य निर्गुण भक्तों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संत दादूदयाल ने कहा है कि राम ही मेरा रोजगार और सम्पत्ति है, उन्हीं के प्रसाद से परिवार का पोषण होता है। व्यर्थ में खाने–पीने की चिंता करने से क्या लाभ धन के लिए झीखने से क्या लाभ क्योंकि जो होना है वह तो होगा ही तथा जो कुछ जाना है वह जायेगा ही। इस विषय में चिंता करने से मनुष्य अपने चित्त को ही खायेगा यानी कि अशांत करेगा

दादू च्यंता कीया कुछ नहीं च्यता जीव कू खाई।
हूंणा है सो है रह्या जाणा है सो जाइ।।[12]

राजधन का सुख सिर्फ कुछ दिनों का होता है, और जो मनुष्य इसके पीछे भागता है वह मूर्ख है। क्योंकि धन तो स्वप्नवत है, इसे नष्ट होने में जरा भी समय नहीं लगता–

दादू माया का सुष पंच दिन, गरव्यौ कहा गंवार।
सुपिनै पाया राजधन, जात न लागे बार।।[13]

कवि सुन्दरदास अपने युग की आर्थिक असमानता से पूर्णरूपेण परिचित थे जहाँ उच्च वर्ग अनेक सुख–सुविधाओं में लिप्त था वहीं निर्धन वर्ग में दरिद्रता व्याप्त थी फलस्वरुप समाज में विभिन्न प्रकार के आपराधिक कर्म चोरी, लूटमार आदि निर्धन वर्ग की जनता द्वारा किए जा रहे थे। संस्कृत की प्रसिद्ध उक्ति है–बुभुक्षितः कि न करोति पापं यानी कि भूखा व्यक्ति क्या पाप नहीं कर सकता। कोई पेट की खातिर चोरी करता है. कोई लूटमार करता है, कोई हिंसा करता है–

पेटहि कारण जीव हतै बहु, पेटहि मांस भखै केसुरा पी।
पेटहि लेकर चोरी करावत, पेटहि कूंगठरि गहि कापी।।[14]

इस प्रकार सभी निर्गुण भक्त कवियों ने धन की महत्ता उतनी ही स्वीकार की जितने में जीवन की मूलभूत आवश्यकता पूर्ण हो जाये। अपने प्रभु से अलग निर्गुण कवियों ने यदि अर्थिक सत्ता का अनुभव किया तो वो भी आध्यात्मिक रूप में तथा समाज में आर्थिक असमानतादूर करने के संदर्भ में क्योंकि वे समाज में भेदभावरहित वातावरण का निर्माण करना चाहते थे। सभी निर्गुण कवियो ने सांसारिक धन को तुच्छ बतलाते हुए राम नाम रूपी धन को अपनाने की सलाह दी है, क्योंकि इससे न तो अमाव उत्पन्न होता है और न ही कुबुद्धि बल्कि समाज में सबका सबके साथ समभाव बना रहता है जो कि सामाजिक गतिविधियों के सुचारू रूप से संचालन के लिए परमावश्यक है। कर्म करते हुए धनार्जन को श्रेष्ठ बताया निठल्लों की तरह बैठकर भिक्षाटन करना या अन्य अन्यायपूर्ण तरीकों से कमाये गए धन को तुच्छ बताया।

सन्दर्भ :

1. पाण्डेय, डॉ० रामसजन, 1995, संतों की सांस्कृतिक संसकृति, उपकार प्रकाशन, दिल्ली संस्करण, पृ0 302
2. वही, पृष्ठ– 303 13.
3. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण सं० 2055 वि०, पृ0 135
4. वही, निधा की अंग, पृ0 65
5. वही, परिशिष्ट, पृ0 199
6. वही, बेसास की अंग, पृ0 45
7. मिश्रा, डॉ0 भोलानाथ, हिन्दी संत साहित्य में प्रतिबिम्बित समाज, पृ0 259
8. सिंह, डॉ0 योगेन्द्र, संत रैदास, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लि०. दिल्ली संस्करण 1972 (फरवरी), पृ0 66
9. डॉ० धर्मवीर, गुरु रविदास, समता प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली संस्करण, 1997, पृ0 16
10. गुरु ग्रन्थ साहित्य सलोकु, पृ0 710
11. वही, रागु गडडी गुआरेरी महला 5 चउपदे दुपदे, पृ0 535
12. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, दादू दयाल ग्रन्थावली, सांच को अंग, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ0 158
13. वही, माया कौ अंग, पृ0 127
14. गुप्ता, डॉ0 किशोरी लाल, सुंदर विलास–अधीर उराहने को अंग, कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी, संस्करण–1974, पृ0 119